ફિરોઝબેગ મિર્ઝા
ગોધરા, (ગુજરાત)

# कबीर : एक परिचय

कबीर के जन्म के संदर्भ में अनेक मत-मतान्तर प्रचलित है । अधिकतर इस दंतकथा को हिन्दी साहित्य में मान्यता मिली है कि एक ब्राह्मणकी विधवा कन्या को गलती से स्वामी रामानंद ने 'पुत्रवती भव'का आशीर्वाद दे दिया । स्वामी जी का आशीर्वाद यों ही फोक तो जा नहीं सकता था; अत: विधवा कन्या ने एक पुत्र को जन्म दिया । लोकलाज के कारण उस बालक को लहरतारा के तालाब में त्यज दिया । नीरू नामक एक जुलाहा (बुनकर मुसलमान) परिवार ने इस त्यकत्य बालक को ताल में देखा और उसे अपने घर ले आये और उसका लालन-पालन अपने बच्चे की तरह करने लगे । 'आ.रामचंद्र शुक्ल' ने कबीर का जन्म जेठ सुदी पूर्णिमा सोमवार विक्रम संवत् १४५६ को बताया है । उस तीथी को ही हिन्दी साहित्य में स्वीकृती प्राप्त हुई है ।

कबीर में जिज्ञासा-वृत्ति अधिक थी । वो बचपन से ही धर्म संबंधी विचार-विमर्श किया करते थे । उस समय स्वामी रामानंद जी का प्रभाव सर्वत्र था जिससे कबीर भी प्रभावित हुये बगैर न रह सके । अत:उन्हें भी स्वामी जी का शिष्य बनने की तीव्र इच्छा उत्पन्न हुयी । स्वामी जी वह पहले संत थे जो जाति-पाती में विश्वास नहीं करते थे । वो सभी वर्ण के लोगों को ईश्वर की संतान मानते थे । उनकी इस प्रकार की विचारधारा से हर वर्ण, जाति, संप्रदाय, मजहब का मानने वाला व्यक्ति उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखता था । एक दिन सुबह कबीर पंचगंगा नामक घाट की सीढ़ियों पर जा पहुँचे स्वामी जी का बड़ी सुबह घाट से नीचे उतर स्नान करने का नित्यक्रम था । उस सुबह अंधेरे में सीढ़िया उतर रहे थे कि उनका पैर कबीर के उपर पड़ गया रामानंद जी के मुख से स्वाभाविक राम.....राम..... निकल गया कबीर ने इस को गुरू मंत्र मान लिया और तब से वो अपने आपको रामानंद जी का शिष्य मानने लगे ।

उनका मन सत्संग में रमने लगा था । जुलाहे का काम वो पेट के लिये और मन की शांति के लिये ईश्वर का ध्यान करना उनकी मुख्य प्रवृत्ति थी । कबीर को जहाँ से भी सच्ची विद्या प्राप्त होती थी उसे वो अपना लेते थे । कहा जाता है कि उन्होंने 'फकीर शेख' सेभी दीक्षा ली थी । अत: उन्हें दोनों धर्मों का सार पता था । उन्होंने सभी धर्मों का यह सार निकाला था कि संसार को गतिमान रखने वाली एक शक्ति है और उसे लोग भिन्न-भिन्न अनुष्ठान, वीधी, पूजा,प्रार्थना, जाप द्वारा खुश रखने के प्रयत्न करते हैं, जिससे के मृत्यु के बाद उन्हें शांति, मोक्ष या जन्नत मिले । सबके रास्ते अलग-अलग है, सबके अनुष्ठान अलग है किंतु वो ले जाता हैं सबको उस ईश्वर के घर जिसने सृष्टि का सर्जन किया है इस बात को कबीर जान चुके थे ।

रामानंद से दीक्षा ग्रहण करके कबीर उदार मार्ग पर चल पड़े थे जहाँ धर्म, मजहब, संप्रदाय, जाति, छुआछुत, वर्णाश्रम आदि मार्ग में रूकावट पैदा नहीं करते थे । रामानंद द्वारा दिया गया 'राम नाम' कबीर के जीवन में दशरथ पुत्र राम से कई दूर तक उन्हें ले गया । कबीर का जीवन घुमक्कड़ रहा कई साधु - संतों, फकीरों, ऋषियों, पीरों से उनकी मुलाकात होती रहती थी ईश्वरिय तत्व की खोज कर रहे कबीर अब दशरथ पुत्र राम की अपेक्षा 'राम नाम' की महत्व समझ चुके थे । व्यक्ति पुजा की अपेक्षा निराकार, सकल ब्रह्माड में विद्यमान, अजर, अमर, सर्वशक्तिमान राम के जाप की वह बात करने लगे । इस संदर्भ में ये दोहा खूब प्रसिद्ध है -

''दशरथ-सुत तिहुँ लोक बखाना ।
राम नाम का मरम है आना ।।''

कबीर ने हिन्दु धर्म के ज्ञानमार्ग को अपनाया वहीं मुसलमानों के निराकार ईश्वर के समर्पण भाव को भी अपनाया ।हठयोग की साधना पद्धति उन्हें अच्छी व सच्ची लगी तो दूसरी ओर वैष्णव, जैन संप्रदाय की अहिंसा का संदेश उनके हृदय को स्पर्श कर गया । कुलमिलाकर कबीर ने एक ऐसे मार्ग को चुना जिसमें सभी धर्मों की जो अच्छी बातें उनको लगी उसको उन्होंने अपनायी और लोगों को सच्ची राह पर लाने के लिये उपदेश दिये । कबीर ने अध्ययन की अपेक्षा सत्संग को अधिक महत्व दिया । यह प्रसिद्ध है कि वो पढ़े-लिखे नहीं थे उन्होंने जो ज्ञान प्राप्त किया था वो दुनिया के रंगढंग को देखकर ही प्राप्त किया था अत: इस संदर्भ में उनका एक दोहा प्रसिद्ध है-

''तू कहता कागद की लेखी मैं कहता आंखिन की देखी ।
मैं कहता सुरझावन हारी, तू राखा उरझोय रे ।''

कबीर किसी धर्म-संप्रदाय को नहीं मानते थे वो तो किसी आडंबर के बीना ईश्वर भक्ति में विश्वास किया करते थे । हिन्दू और मुसलमान दोनों की कर्म - विधि विधान को लेकर उन्होंने दोनों को खरी-खरी सुनायी है । देश-काल और वातावरण के प्रभाव से मनुष्य की ईश्वर आराधना में परिवर्तन होते रहते हैं । कबीर ने इन कर्म-काण्ड के मतभेद को भुलाकर एक ईश्वर की भक्ति का रास्ता लोगों को बताया । उन्होंने भक्ति का सर्वश्रेष्ठ मार्ग 'नाम-स्मरण' को बताया अर्थात् ईश्वर के नाम का जाप ही मुक्ति का श्रेष्ठ मार्ग उन्होंने लोगों को बताया । जिस प्रकार तुलसीदास जी ने दास्य भक्ति को श्रेष्ठ भक्ति भावना, प्रतिपादित किया उसी तरह कबीर की ईश्वर भक्ति में दो रूपक दिखायी देते है; जहां एक ओर वो ब्रह्म को पति और भक्त को पत्नी मानते हैं वहीं दूसरी ओर वो ईश्वर को स्वामी अथवा मालिक जैसे

रूपकों में बाँधते दिखायी देते हैं । उनका समर्पण भाव से संबंधित एक दोहा प्रसिद्ध है।-

''कबीर कुत्ता राम का,
मुतिया मेरा नाम ।
गले में जेवड़ी राम की
जित खिंचे तीत जाऊँ।।''

माधुर्य भाव से भक्ति में वो ईश्वर को पति मानते हुए लिखते है-

''हरि मेरा पीव हरि मेरा पीव ।
हरि बिन रहि न सकै मेरा जीव ।।''

कबीर जी की भक्ति भावना में उनके गुरू रामानंद जी का प्रभाव देखा जा सकता है । जिस प्रकार रामानंद ने जाति-पांति का विरोध कर के सभी मनुष्यों को ईश्वर की संतान कहा था और सभी को ईश्वर की भक्ति करने का अधिकार दिया था उसी प्रकार कबीर ने भी जांति-पांति का खुलकर विरोध किया । रामानंद ने किसी धर्म-मजहब की टीका नहीं की अपितु सभी को एक ईश्वर प्राप्ति के भिन्न-भिन्न मार्ग बताये किंतु कबीर ने सभी धर्मों के विधि-विधान, पूजा, आराधना, इबादत, धार्मिक अनुष्ठानों को आहत पहुँचाने वाली वाणी का प्रयोग किया । जहां वो एक ओर हिन्दूओं के पौराणिक अनुष्ठानों को चुनौती देते हुये लिखते हैं-

''पाहन पूजैं हरि मिलैं तो मैं पूजूं पहार ।
घर की चाकी कोई न पूजै पीस खाय संसार ।।''

तो दूसरी ओर मुसलमानों की इबादत-गाह की खिल्ली अड़ाते हुय लिखते हैं-

''कांकर पाथर जोड़ी मस्जीद लेई बनाई ।
ता चढ़े मुल्ला बाँग दे क्या बहरा हुआ खुदा ।''

इस दोहे को देखते हुये दो बातें फलीभूत होती है । एक तो ये कि कबीर को 'बाँग' अर्थात् 'अज़ान' देने के मतलब को जानते नहीं थे क्योंकि 'अज़ान' में लोगों को अल्लाह की इबादत करने के लिये पुकारा जाता है जिसमें लोगों को कहा जाता है कि अल्लाह ही सबसे बड़ा है और यदि कामयाबी चाहते हो तो मस्ज़ीद में आ जाओ इबादत के लिये । अत: अज़ान भक्तों, बंदो को संबोधित करके पुकारी जाती है अल्लाह को सुनाने के लिये नहीं । दूसरी बात ये फलीभूत होती है कि वो शायद इसका अर्थ भी जानते हो किंतु उक्तिवैचित्र के द्वारा अपने श्रोताओं पर अच्छा प्रभाव डालना चाहते हो; जो भी हो किंतु उनके इस प्रकार के दोहों से उनको लोकचाहना अच्छी मिली वहीं एक धर्म उस जमाने में एसा भी रहा होगा जो ऐसी वाणी से सहमत नहीं होता होगा ।

कबीर जानते थे कि उनकी ऐसी वाणी से कई लोग नाराज भी हो सकते हैं किंतु उन्हें किसी की प्रशंसा या नाराजगी

की परवाह नहीं थी । कबीर के भक्तों में वो ही स्थान प्राप्त कर सकते हैं जो निर्भिक हो जिसमें समाज का भय न हो जो किसी समूदाय विशेष से डरता न हो । वो जानते थे कि उनके साथ वो ही चल सकते हैं जो मोह - माया से मुंह मोड़ चुका हो । उनका बताया मार्ग तलवार पर चलने के समान है । अर्थात् इस संदर्भ में वो लिखते हैं -

''कबीर खड़ा बाजार में लिए लुकाठी हाथ
जो घर बाले आपना सो चलै हमारे साथ ।।''

कबीर ने पुरी जिंदगी अंधश्रद्धा का विरोध किया और अपनी मृत्यु स्थली भी 'मगहर' को चुनी; जिसके संदर्भ में ये कहा जाता था कि मगहर में जिस किसी की मृत्यु हो जाती है उसे स्वर्ग में स्थान नहीं मिलता । आज भी मगहर में उनकी समाधि स्थली बनी हुयी है । संवत् १५७५ का उनकी मृत्यु हो गयी थी । उनकी वाणी का संग्रह उनके शिष्य 'धर्मदास' ने बीजक नाम से किया है ।